Devbhoomi Journal of Multidisciplinary Research (DJMR)
URL: www.usvv.ac.in/djmr Email: djmr@usvv.ac.in
Volume-1, Issue-2, Jul - Dec 2023

डिजिटल भ्रष्टाचार : बेदखल किसान एवं आदिवासी

आचार्य शिव प्रसाद शुक्ल
हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयाग

हिन्दी साहित्य में लोकतंत्र के तमाम नवाचार होते–होते हर तरह के भ्रष्टाचार को क्रमशः उठाया गया परन्तु भ्रष्टाचार तो डिजिटल होता गया। उसकी बानगी मधु कांकरिया की आद्यंत रचनाषीलता में झलकती है। कुछ लोग जन प्रतिबद्धता के साथ तो कुछ लोग बौद्धिक इन्टरकोर्स के लिए लिखते हैं। मधु कांकरिया की जन प्रतिबद्धता किसी से छिपी नहीं है। उनके उपन्यास 'सलाम आखिरी' में वेष्या समस्या, 'खुले गगन के लाल सितारे' में नक्सलवादी, 'सेज पर संस्कृत में' धर्म की ओट में महिलाओं के यौनशोषण, 'युद्ध एवं बुद्ध' में कष्मीर समस्या तो 'हम यहाँ थे' में आयोग कमीषन में, सरकारी कर्मचारी लोकतंत्र में राजा महाराजा से कहीं ज्यादा कहर किसानों आदिवासियों, मजदूरों एवं महिलाओं पर ढा रहे हैं। इस उपन्यास में क्रम के अंतर्गत 'क्योंकि तुम कर्म नहीं हो!', 'दीपषिखा की डायरी : अपने अपने जंगल', धर्म और शर्म, मेरे घर आई जिंदगी, न जाने नक्षत्रों से कौन, निमंत्रण देता मुझको मौन, ओ जिन्दगी! ओ प्राण! एवं उत्तरार्द्ध के अंतर्गत प्रेम और पहाड़, इस गाँव में अभी एक औरत बची हुई है!, एवं 'सुनी सुनाई' जैसे उपषीर्षक बहुत कुछ कह जाते हैं। प्रधानमंत्री सड़क योजना, कोई भी संस्था स्थापित करने के लिए किसानों एवं आदिवासियों की खेती को औने पौने भाव में येन–केन प्रकारेण अधिग्रहण किया जाता है। एक नहीं कई जंगलकुमार एवं दीपषिखा होम हो रहे हैं। भिलाई में हम सब शंकर गुहा नियोगी की हत्या भूल गए। रानी कमलापति एवं टंट्या भील के प्रति प्रेम आदिवासियों का भावात्मक शोषण करने का नया तरीका है। किसान, आदिवासी एवं औरत कहीं भी हों येन–केन प्रकारेण शोषित हैं। किसान आदिवासी बेदखल होकर शहरों में शोषण के षिकार हैं। जंगल कुमार का वक्तव्य : ''आपने कहा था कि जैसे शंख को कान से लगाओ तो समुद्र की तरंगों का अहसास होता है वैसे ही इन आदिवासियों को गले लगाओ तो सभ्यता की क्रूर तरंगें सुनाई देती हैं।''[1] जंगल कुमार एवं दीपषिखा अपने अपने दर्द के मारफत किसान, आदिवासी एवं औरतों के दर्द के पोर–पोर खोल रहे हैं। घर परिवार से शुरू हुआ यौन शोषण कार्यालय सरकारी या प्राइवेट हर जगह पैर पसार चुका है। ऐसे ही प्रभा खेतान ने 'अन्या से अनन्या' आत्मकथा नहीं लिखी है। दीपषिखा का तलाक, बेटे सोनू का जन्म, जंगल कुमार के कार्यों के चलते उसके प्रति आकर्षण भी दिलचस्प एवं रोचक है। दीपषिखा सोनू बेटे के चलते लाचार दिखायी दे रही है। भाई, माँ, बाप कौन लड़की के जीवन में हाथ बँटाता है। माँ का चाबुक बराबर दीपषिखा को लगता है। राजस्थानी कहावत ''सहजा चूडलयो फूट गयो/हलको हो गयो हाथ/बाई का बंधन कटिया/भलीकरी जग्गनाथ।''[2] इससे भी स्त्री की विवषता का पता चलता है। इसे विवाह संस्था की बदतर स्थिति ही कहा जाएगा।

दीपषिखा, सोनू, राजीव (सोनू के पिता) के त्रिकोणीय प्रेम में खटराग उत्पन्न होना उत्तर आधुनिकता में देह की राजनीति की विषिष्टता है या भारतीयता को तार–तार करना है। प्राइवेटाइजेषन के चलते दीपषिखा ही नहीं किसी भी औरत का हर प्रकार से शोषण हम सब देख रहे हैं परन्तु कुछ बोल नहीं रहे हैं। इसी का बाकायदा जिक्र प्रदीप सौरभ के उपन्यास 'और सिर्फ तितली' में है। दीपषिखा के साथ पारूल की समस्या भी कुछ और ही बयान कर रही है। दीपषिखा अपने पति राजीव से तलाक लेने के बाद पास–पड़ोस की औरतों को भी तैयार करती हैं कि वे अन्याय न सहें। उत्तरोत्तर औद्योगीकरण के चलते किसानों के समझ में आ ही नहीं रहा था। किसान भौचक्का था। ''19वीं 20वीं सदी में इस शहर में श्रम आधारित उत्पादन संस्कृति की नींव रखी थी। एक औद्योगिक सर्वहारा को

जन्म दिया और बंगाल को बंगाल बनाया, लेकिन आज वे दम तोड़ रही थी। यहाँ भी अधिकांष जगह मारवाड़ियों का पैसा लगा हुआ था जिनके लिए ये जूट मिलें आज के भूमंडलीय बाजार में उतने फायदे का सौदा नहीं रही थीं।..... हजारों मजदूर बेकार हो रहे थे।''[3] इसीलिए लाल बहादुर नेपाल से भागकर जमना लाल का बंधुआ मजदूर बन गया। जमना लाल या उनके पुत्र पुत्री पत्नी सब 'मुफ्त का चंदन घिस मेरे नंदन' की तरह लाल बहादुर का शोषण करने लगे। हर व्यक्ति को अपनी गलती का एहसास होता है तभी तो प्रधानमंत्री किसानों के तीनों बिलों को वापस ले लिया। रूपए कमाने की ललक जमना लाल के मुँह से सुनें ''मदहोष जवानी ने कैसा तो बनिया बना डाला था बीमारी ने आदमी बना दिया बुढ़ापे ने परिवार का असली चेहरा दिखा दिया–अपनों में छिपा गैर दिखा दिया,गैरों में छिपा अपना दिखा दिया। काष, जवानी में आ जाती ऐसी बीमारी, ऐसा बुढ़ापा.....ये प्रकाष–पल।''[4] बाजारीकरण ने सारे मूल्यों को धो दिया। तमाम लाल बहादुर बँधुआ मजदूर बन गए।

स्वतंत्रता जरूर मिली परन्तु लोगों की मानसिकता में आज भी परिवर्तन नहीं आया। ये बात जमनालाल के वक्तव्य से साफ परिलक्षित होती है। ''घर अन्याय और सामंतवाद सिखाने की सबसे बड़ी पाठषाला है।''[5] शहरों में भी छुआछूत दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। जयंती को कोई स्पर्ष नहीं करना चाहता। प्रदीप ब्लाउज के नीचे पर्स रखने की सलाह दे रहा है। प्रदीप का वक्तव्य ''इतने भव्य ऑफिस को भी आप लोगों ने गद्दी बनाकर रख छोड़ा है जिसे देखो हिन्दी या मारवाड़ी में बोलता है, आप लोग सब तो इतना पढ़ा–लिखा है– व्हाई डोंट यू स्पीक इंग्लिष।'' ये हैं वैष्वीकरण का प्रभाव। इसीलिए दीपषिखा ने जवाब दिया : 'अंग्रेज चला गया औलाद छोड़ गया''[6] की बात डिजिटल उर्फ पोंगा पंडित भारत में दिखायी दे रही है। कोई बच्चा पैदा करने के पहले कुत्ते को पाल रहा है: ''मैं अपने बच्चे को पाल सकती हूँ या नहीं!''[7] स्त्री विमर्ष के युग में कुत्ते की मीटिंग के लिए बंध्याकरण और अपनी मीटिंग के लिए मालकिन मिसेज चंदानी बेताब दिखायी दे रही हैं। दीपषिखा के विद्रोही तेवर यों भइया के सहारे पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक विसंगतियों को समझने में मद्द मिलती है। माँ के बारे में टिप्पणी : ''अरे इनके जीन्स में है मेहनतकषों को निकृष्ट और हरामखोर अय्याषों को महान् समझने की घटिया सोच। अम्मा के राजपाट और उनके विचारों को चुनौती देने के बजाय फिलहाल उनकी लय–ताल में बहोगी तो वे तुम्हें आगे बढ़ने में पूरा सहयोग भी करेंगी अन्यथा तुम्हारी अम्मा ही चील बन अपनी चोंच से तुम्हारे वजूद को लहू लुहान कर देंगी।''[8] गरीब सुदामा अपनी बेटी का नाम पिंकी रखने से मार खाता है और शहर में आकर सामान्य जीवन यापन कर रहा है। लेखिका का वक्तव्य : ''जिन्दगी बुरी नहीं है सुदामा, हम ही बुरे हैं कि हम आदमी नहीं बन सके।''[9] दीपषिखा को अपने बेटे सोनू के प्रवेष के लिए दर दर की ठोकरें खानी पड़ रही हैं। पति के बारे में हर कोई पूछ रहा है। धर्म एवं शर्म के नाम औरतों के साथ सब कुछ होता है। सरकारी एवं प्राईवेट नौकरियों में आज भी सामंती प्रथा लागू है। ''ऐष्वर्य और सफलता की अफीम के सहारे खड़ा प्रबंधन!''[10] पोंगा पंडित भारत उर्फ डिजिटल इंडिया को बदलेगा? कम्प्यूटर के प्रयोग से हाथ से लिखने वाले किसी काम के नहीं रहे। ऐसी स्थिति में दीपषिखा खुद कम्प्यूटर का कार्य कर रही है। मीनू के बड़े भाई को समझा बुझाकर पटरी पर ला रही है। झुग्गी झोपड़ी में रहती जयंती की बेटी के साथ जो कुछ होता है वह किसी से छिपा नहीं है। झुग्गी झोपड़ियों के बच्चे चीकू को पटरी पर लाने के लिए'' अपनी पुष्तैनी जमीन तक को गिरवी रख देनी पड़ी थी। इस दुर्घटना के बाद रूपा ने हमारा काम छोड़ दिया था लेकिन मुझसे वह बराबर मिलती रहती थी। उसकी वह पुष्तैनी जमीन फिर उसके हाथ वापस कभी नहीं आ पाई।''[11] रूपा जयंती जैसी महिलाएँ आदिवासी हों या सामान्य ग्रामीण उन लोगों का हर तरह से शोषण हो रहा है। तवलीन बहुत दिनों के बाद अपने पति का वर्णन यों कर रही है: ''जानती हो, हर रात बेकाबू साँड़ की तरह घुसता है वह मेरे कमरे में और मुझे अपनी मर्दानगी के बोझ तले कुचलकर संतुष्ट सूअर की तरह सो जाता है और मैं सोचती रहती हूँ कि इसी रात का सपना मैं सोलह साल से देख रही थी।''[12] यह

स्थिति पढ़ी–लिखी या अनपढ़ या शहर या गॉव की हर स्त्री की है। भले ही देह की राजनीति करने वाली औरतें कुछ भी लिखती रहें। दीपषिखा का तवलीन के मारफत वक्तव्य : 'जिसकी खाओ बाजरी उसकी साजो हाजिरी तो इस बीमारी से बिना आर्थिक रूप से मुक्त हुए नहीं लड़ा जा सकता हैं।''[13] 'सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयन्ते' यों ही नहीं कहा गया।

राम मंदिर के नाम स्वयं सेवकों से सब कुछ कराया जा रहा है। कोई लड़की बाल कटवा रही है तो भी समाज के लोगों को अच्छा नहीं लगता है। नक्सल विद्रोह यों ही नहीं पनपा, उसके लिए भारतीय समाज एवं सरकार ही जवाबदार है। सोनू भी नई–नई पढ़ाई में नई–नई बातें पूछता है दीपषिखा उसका जवाब नहीं देती है और सोचती है कि उम्र होते सारी बातें सोनू समझ जाएगा। ताऊ जी के निर्मम व्यवहार से ताई जी ने आत्महत्या की और नई ताई कम उम्र कलावती भी ताऊ के व्यवहार से काफी परेषान हैं। दीपषिखा उन्हें भी तैयार करती है। भइया दीपषिखा की दूसरी शादी करवाना चाहते हैं और दीपषिखा सांसारिक प्रपंचों को सुन–सुन कर उकता गई है। जो भइया ढाढ़स बँधाते थे ''तेल, नून और लकड़ी के जुगाड़ में स्वाहा हो गए।''[14] दीपषिखा पुनर्विवाह नहीं चाहती थी : 'पढ़िए गीता/बनिए सीता/फिर इन सबमें लगा पलीता/ किसी मूर्ख की हो परिणीता/निज घर बार बसाइए।''[15] दीपषिखा का व्यक्तिगत संघर्ष, काली एवं जयंती की जातिगत नफरत भी द्रष्टव्य हैः ''माँजी, हमयई तो आप आरती के समय सामने से नाही गुजरे देतू कि भगवान जी के दोष लग जाए लेकिन भंगन के हाथे का पानी पीए में और आरती के बर्तन मजवाने में तोहरे भगवान के दोष नाहीं लागत?''[16] यह सुनकर मॉ जी आग बबूला हो गई सुदामा के शब्द ''बिना हम लोगों की सेवा के एक दिन काम नहीं चले आपका एक दिन हमारी जैसी जिंदगी जीकर देखिए ..... पता चल जाएगा कि क्या है आपकी जाति..... खून चूसने वाली खटमल की जाति है आपकी।''[17] माँ की नफरत से दुःखी हो दीपषिखा बड़बड़ाती है ''कौन जाने किसकी नसों में किसका लहू बह रहा हो। कौन जाने काली के पुरखे जैन या किसी और उच्च जाति के रहे हों। फिर हम भी तो राजपूत से ही जैन बने हैं। मैंने पता लगाया था अपने पूर्वजों के बारे में। कहते हैं कि हम राजा की बेटी के साथ दहेज में आए थे, बाद में राजा ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया तो हम भी राजपूत से जैन हो गए।''[18] विस्थापन की समस्या दिल्ली, कलकत्ता, अहमदाबाद, ताजमहल आदि बनाने से ही शुरू हो गई थी : ''लोगों को उजाड़कर, उन्हें तबाह कर शहर सुंदर बनेगा? यह तो वैसा ही है जैसे सड़ी हुई देह का मेकअप करना। शहर लोगों से बनता है। उनकी खुषहाली से बनता है शहर सुंदर। यह शहर किसका है? किसके लिए है? क्या यही डेमोक्रेसी है? जनता की, जनता के लिए, जनता द्वारा? और यदि सुंदरीकरण करना ही है तो लोगों के भ्रष्ट दिमाग का सुंदरीकरण करो। उन्हें समझाओ 'जीओ और जीने दो' का मूलमंत्र दरअसल शहर का सौंदर्य तो बहाना है, यह दरअसल मुट्ठी भर व्यापारियों और सरकार की मिलीभगत है।..... सच पूछा जाए तो 82 साल के ज्योति बाबू में अब वह ताब बची भी नहीं है कि सब कुछ अच्छे से संभाल लें। लेकिन सत्ता का लालच इतना कि किसी और युवा नेता को चांस देने के बजाय खुद ही चिपके बैठे हैं सत्ता से/देखना इसका अंजाम कितना घातक होगा।''[19] पष्चिम बंगाल एवं देष की हालत से हम सब परिचित हैं। लाल बहादुर मुट्ठीभर राख तो तवलीन बच्चे की मॉ, 9/11 हमले के बाद सिक्खों ने बाल कटवा दिए कोई भूल से आतंकवादी न समझ बैठे। जयंती की बेटी दुलारी एवं उसका प्रेमी पकड़े गए गर्भवती अवस्था में। सोनू भी पढ़ते–पढ़ते रवीन्द्र की कविताओं का आनंद लेने लगा। दीपषिखा भी गुमला, लोहरदगा और पलामू की यात्रा करके आदिवासियों की उत्पत्ति ''चालो'' से हुई है। राजस्थानी गीतों को बीच–बीच में टाँक कर दीपषिखा का वक्तव्य बहुत कुछ कह जाता हैः 'श्रम, सौंदर्य, प्रकृति और संघर्ष की एक पूरी आदिम दुनिया खुल रही थी मेरे सामने धीरे–धीरे।''[20] विचारधारा के नाम किसी भी देष को तवाह करके बौद्धिक भेड़िए अपनी रोटी सेंक रहे हैं।'' गॉव पैदा करता है और शहर खाता है। गॉव पेड़ लगाता है, शहर मारूति खरीदता है।''[21] हालॉकि गाँवों की

तस्वीर अम्बेदकर, कांषीराम, गोकुल, सरदार, लोहिया ग्राम योजना के तहत बदला जा रहा है। बिषुनपुर के आदमी जंगल कुमार को सब कुछ मानते हैं। जल, जंगल, जमीन के सच्चे रखवाले आदिवासी 'खुषहाल भारती' के तहत 'पूर्वजों की जमीन मत लूटो', 'हम पढ़ब, आगे बढ़ब''[22] के नारे से चैतन्य हो रहे हैं। 'करमा' त्यौहार की तैयारी, उषा के पति लक्ष्मण मुंडा को भालू ले गया और अधखाई लाष मिलने पर उसके भाई ऊषा को ही दर किनार लगाने के लिए तरह–तरह के आरोप लगाते हैं। तथाकथित कलम घिस्सुओं पर लेखिका का कटाक्षः ''आदिवासियों को बड़ी चालाकी और सफाई से इतिहास में कहीं असुर कह अपमानित किया गया है तो कहीं इतिहास से गायब ही कर दिया गया है। इतिहास में 1857 को आजादी की पहली लड़ाई कहा जाता है जो गलत है। 1774 में अंग्रेजों से पहाड़िया जनजाति ने पहली लड़ाई लड़ी थी। ऐतिहासिक तथ्य यह भी है कि अंग्रेजों को भारत से खदेड़ने के लिए अपनी तरह का विद्रोह तिलका माँझी ने सन् 1824 में उस समय किया था, जब उन्होंने अंग्रेज कमिष्नर क्लीवलैण्ड को अपने तीर से मार गिराया था। 1854 में सिद्धू कानू ने अंग्रेजों के खिलाफ झारखंड में लड़ाई छेड़ी थी।''[23] सबाल्टर्न इतिहास लेखक तथ्यों के आधार पर यथार्थ का जिक्र कर रहे हैं, इसे नकारा नहीं जा सकता।

आदिवासी कर्णधारों की तिथि अनुसार पराक्रम को उद्घाटित करती हुई लेखिकाः 'जल, जंगल और जमीन/ये हो जनता के अधीन'[24] जैसे नारे से काफी प्रभावित होती है। इसीलिए कलकत्ता या कोई भी शहर 'वनमित्र परिषद' के आगे कुछ भी नहीं है। जंगल कुमार के शब्दों में 'हमारी सभ्यता की अधिकांष यात्रा स्त्री, निर्बल, दबे–कुचले और आम आदमी की विरोधी रही है।''[25] बिरादरी को भोज देना बिरसिया एवं असूर जनजाति में थी लड़के–लड़की पसंदगी के समय अनिवार्य है बषर्ते आर्थिक स्थिति अच्छी न होने पर सहवास करें और बाद में बिरादरी को खिलाएँ। टीके को पुरूषार्थ की निषानी, नाक छिदवाना, अफ्रीका के कबीलाई समाज में लड़के लड़की शादी तभी होती है जो शेर को मारने में सक्षम हो। कार्तिक उरॉव तथाकथित बौद्धिक मानवीय भेड़िए की नष को पहचानता हैः ''मुझे तो लगता है यह लगड़ी टॉग के हरामी रतन साहू का किया–धरा है। .....तीर कमान लेकर निकले आदिवासी और आगे–आगे बाबा–आज या तो जमीन वापस लेंगे या तेरी जान लेंगे। गैरकानूनी ढंग से ली जमीन का गैरकानूनी ढंग से ही उद्धार हुआ। लंगोट खुल गई साले की, भाग खड़ा हुआ तीर कमान वाली फौज को देखकर।''[26] संघ एवं राज्य लोकसेवा आयोगों द्वारा नियुक्त वन संरक्षक, वन अधिकारी, वन रक्षक एवं बी–डी.ओ भी खूब कमीषन खा रहे हैं। संघ या लोकसेवा आयोगों द्वारा नियुक्त कर्मचारी मात्र आदिवासियों के लिए ही अभिषाप नहीं हैं बल्कि समग्र मानवता के लिए कलंक हैं ''वन विभाग के कर्मचारी हा फसल के समय आदिवासियों से कमीषन माँगत, खरीफ की अलग, रबी की अलग, बाबा ने चेतना जगाई कि ये सरकारी कर्मचारी हैं इन्हें सरकार से वेतन मिलता है, बंद करो इन्हें यह कमीषन देना। इन सब कामों में खतरे तो होंगे ही। बाबा की जान को खतरा है।''[27] दीपषिखा आदिवासियों के जीवन रहन सहन से प्रभावित होते हुए कहीं न कहीं उसके मसीहा जंगल कुमार के प्रति काफी आसक्ति है। ''मगध साम्राज्य से लेकर आजादी की लड़ाई तक में बिरजिया और असुर लोगों ने लौह तकनीक के बलबूते अपनी पहचान बनाई थी।..... मगध नरेष ने लड़ाई के लिए अस्त्र–षस्त्र का निर्माण इन्हीं असुर और बिरजिया लोगों से करवाया था। उसी परिवार की वर्तमान पीढ़ी मजदूर बन गई।''[28] आदिवासी रोजी–रोटी के लिए शहर–षहर भटक रहे हैं तो शहरी औरतों के पति बड़ी नौकरी बच्चों की पढ़ाई के लिए अलग–अलग तपस्या कर रहे हैं, दोनों स्थितियों में आदिवासी एवं सामान्य औरतों की एक जैसी विडम्बना है। आदिवासी औरतों का हर तरह से शोषण कांट्रेक्टर तिवारी जैसे लोग आज भी कर रहे हैं तो शहरी औरतें स्वेच्छया अनपढ़ मजदूरों से अपनी यौन इच्छाएँ पूरी कर रही हैं। बाबा का वक्तव्यः ''चोर भालू नहीं चोर हम हैं, आज जहाँ यह खेत है, पहले वह भालू का घर था, हमने उससे उसका घर छीन लिया, तो भालू कहाँ जाएगा? बाबा को खतरा किससे है' अँधेरे से कि जानवरों से?''[29]

आए दिन विद्रोही के बजाय अपने हक की लड़ाई लड़ने वाले आदिवासी एवं जंगल कुमार को पुलिस जेल में डालती, मुकदमा चलता और जमानत होती। अम्बेदकर के हिन्दू कोड बिल का भली प्रकार निर्वाह या जार कर्म को धूल चटाने वाले आदिवासी समाज के कार्तिक दा'' मलाल कही के होए हम दोनों के बराबर मानित है और दोनों के बराबर को हक देईत है।''[30] स्त्री विमर्ष के बावजूद अनपढ़ आदिवासी एवं पढ़ी लिखी कामकाजी औरतों की एक जैसी विडम्बना कमोवेष समग्र विष्व में प्रसरित है।

दीपषिखा जंगल कुमार एवं आदिवासियों के बीच इतना रच बस गई कि कलकत्ता उसे अच्छा ही नहीं लगता है। ''जिंदगी में सार्थकता ज्यादा रहे, फर्नीचर कम। तभी शुरू होगा–स्वयं को स्वयं से रचने का सफर।''[31] सुलक्षणा के साथ कलकत्ता में जो कुछ होता है दीपषिखा उसमें भी हिम्मत बँधाती है। बेटे सोनू को छात्रावास की व्यवस्था करने के बाद दीपषिखा सब को अलविदा करके जंगल कुमार के पास आ जाती है। ''ये बड़े बड़े महानगर इनसान को घिस–घिसकर इतना छोटा कर देते हैं कि फिर वह कोई बड़े सपने देखने के काबिल ही कहॉ रह पाता है।''[32] फिलहाल दीपषिखा का संदेष ''स्त्री हो या पुरूष बात अपने गुण, प्रकृति, धर्म, स्वभाव और जरूरत के अनुसार बदलने से बनती है।''[33] दीपषिखा की माँ अपनी बेटी को जंगल में नहीं जाने देना चाहती है ''औरत या तो पति के घर सुरक्षित रहती है या पिता के घर.....और कहीं डौल नहीं बैठता उसका.....और बैठता भी है तो सिवाय बदनामी के हाथ कुछ नहीं लगता.....पता नहीं किसने बुद्धि भ्रष्ट की तुम्हारी''[34] तलाक शुदा बहन दीपषिखा को भइया का आषीर्वाद'' इन महानगरों में सबको लगता है कि हम पा रहे हैं..... धन, दौलत, सुख, समृद्धि, भविष्य पर दरअसल वस्तुओं में लिपटे हम हर पल खो रहे हैं खुद को भविष्य की चिन्ता में खर्च करते जा रहे हैं अपना वर्तमान। छीजती जा रही है हमारी मानवीय संवेदनाएँ, स्मृतियाँ, अहसास..... अच्छा है कि तुम यहॉ से जा रही हो। सारी सांसारिकता को झाड़कर तुम वहॉ तुम होगी.....असली तुम। खूब फलो–फूलो और पेड़ लगाओ।''[35] दीपषिखा को कार्तिक दा बहुत कुछ बताते हैं ''इन्हीं तीरों से मेवाड़ के भीलों ने अकबर की फौज को रौंद डाला था।..... आज भी मेवाड़ के राज चिह्न पर एक तरफ राजपूत हैं तो दूसरी तरफ भील हैं।''[36] नीलगिरि के पौधे पर्यावरण के लिए अच्छे नहीं होते हैं। भोला पहाड़िया दीपषिखा को बता रहा हैः ''हम पर लिख–लिखकर, हम पर फिल्में बना–बनाकर, हमें प्रदर्षन की वस्तु बनाकर लोगों ने करोड़ों कमा लिए जबकि हम वहीं खड़े हैं। उम्मीद करता हूँ कि आपकी वैसी कोई महत्वाकांक्षा नहीं होगी। वैसे बाबा भी यही कहते हैं कि मैं अपने जमींदार पूर्वजों का प्रायष्चित कर रहा हूँ, यहाँ रहकर। ठीक है आप आइए आती रहिए तब तक जब तक कि हम और आप बराबर नहीं हो जाते।''[37] जंगल कुमार का सहज आकर्षण दीपषिखा के प्रति है। आदिवासियों को ईसाई बनाने की प्रक्रिया में ये लोग अवरोध डालते हैं। पत्रकार शुभम् की हत्या, दीपषिखा एवं जंगल कुमार का प्रेम सम्बंध द्वन्द्व में फॅसा है यानी जवाहर लाल नेहरू की तरह दीपषिखा एवं जंगल कुमार हिचकोले खा रहे हैं। पुलिस ने इतवारी को तरह–तरह की यातनाएँ दी। इसी उधेड़बुन में दीपषिखा का वक्तव्यः ''प्रेम को स्पेस दूँ तो सेवा रूठ जाती और सेवा को स्पेस दूँ तो प्रेम रूठ जाता। क्या करूँ? कई–कई खानों में बॅटा मेरा मन! एक रोकता, टोकता तो दूसरा ठेलता–आगे की ओर। गुनगुनाता कान के पास– रूकना नहीं! यही जीवन है..... यही तो है जीवन।''[38] दीपषिखा से भौतिक दूरी बनाकर रहना चाहते हैं तो दीपषिखा कहती हैः ''मैं तो सोचती थी कि सौंदर्य नहीं वरन् कर्म से उपजे हमारे प्रेम को पूरा आदिवासी समाज मान्यता देगा कि मैंने उनके जननायक को अपनी आत्मा.....अपने प्रेम के जीवन जल से सींचा। अब समझी कि क्यों आपने मेरे बारे में यह फैला रखा है कि मैं कोई शोध छात्रा हूँ और आपके ऊपर मेरी शोध क्रिया चल रही है।''[39] जंगल कुमार गुजरात दंगों के बाद टिप्पणी करते हैंः ''ये धर्म की डोर पकड़कर सत्ता हथियाते हैं और सत्ता में आकर धर्म के ठेकेदार बन जाते हैं।..... वे मुझसे से वैसे ही चिढ़े हुए जैसे बजरंगी वेलेनटाइन डे से चिढ़ते हैं, जैसे तालिबानी औरत के उघड़े मुँह से चिढ़ते हैं।..... उठो जंगल कुमार, उठो और उठाओ अपनी वरमाला! यह उमंगों और कामनाओं के उत्सव मनाने का

देष है जंगल कुमार! कामसूत्र का देष! मंडेला का देष कामसूत्र का देष नहीं था फिर भी वह मंडेला का आत्मविष्वास था जिसके चलते उन्होंने व्यक्तिगत जीवन और राजनीति को परस्पर दूर रखा।''[40] दीपषिखा एवं जंगल कुमार की आँख मिचौनी में हिचकोले खाता उपन्यास जमीनी हकीकत का दस्तावेज बन गया ''जमीन जो आदिवासियों के लिए धरती माँ थी तो भूमाफिया और कॉरपोरेट्स के लिए सोने की मुर्गी। इसी जमीन ने आदिवासियों को खून के ऑसू रूलाए, उनकी महिलाओं को बलात्कार करवाया, उनके घरों को तबाह किया और उन्हें पलायन करने को मजबूर कर इन्हें मजदूर बना ईंट, गारा, पत्थर ढोने को मजबूर किया।''[41] ग्राम स्वराज न स्थापित होने से कोरोना काल में प्रवासी मजदूरों की स्थिति काफी दयनीय रही। तरह–तरह से किसानों एवं आदिवासियों की भूमिका अधिग्रहण लोगों को बेरोजगार एवं आत्महत्या के लिए मजबूर कर रहा है।

पुलिस की गोली से तमाम आदिवासी मर रहे हैं। गबन के सूरदास जैसे नायकों को कॉरपोरेट्स सेक्टर, सरकार, अधिकारी जेल में डालते जा रहे हैं। ''आज तक मुआवजा नहीं मिला। चारों तरफ गिद्ध बैठे हैं। सारी मानवता दॉव पर लगी है। लोकतंत्र कम्पनीतंत्र में बदल गया है।''[42] सरकार, कॉरपोरेट्स, अधिकारी, ठेकेदार, धर्मगुरू जैसे लम्पट कम्पनी तंत्र के माध्यम से काला धन को सफेद धन बना रहे हैं: ''आप मुनाफा खाने वाली इन परजीवी कम्पनी वालों के झाँसे में न आएँ। ये झाँसा और लालच देकर हमारी जमीन हथियाने की चेष्टा करते हैं, उससे बात नहीं बनती तो जुल्म और जोर जबरदस्ती पर उतर आते हैं। आम लोगों में पुलिसिया अत्याचार के जरिए खौफ पैदा करते हैं। भारत में आजादी से लेकर आज तक अमीर कम्पनियों के लिए सारी जमीनों पर कब्जा पुलिस की लाठी और बंदूकों के दम पर ही किया गया है। विडम्बना है कि हम शोषित एक नहीं हो सके जबकि दुनिया के सारे कम्पनी वाले एक हो गए।''[43] मरीज फुलवा की माँ अपनी जमीन से चिपकी है:'' जिन्दगी इन्हीं गुजार दिहा अब पराई जमीन पर न मरब। कुछ भी होई जाए अपने जीयतेब हम इ आपन घर न छोड़ब। आपन आदमी के हाथों लगावा जामुन और पीपर के पेड़ के नीचे मरब। पराए गॉव में न मरब।''[44] बीमार फुलवा को बंदूक की गोली से छलनी करके पुलिस के घेरे में अंतिम संस्कार करना पड़ा। ''मानव सभ्यता शायद ही कभी इतनी अमानवीय हुई हो कि अपने भवनों की मीनारों को ऊँचा करने के लिए निर्दोषों और निर्बलों के बित्ता भर घर को भी उजाड़ दे!''[45] दीपषिखा को नक्सली रणधीर भगत से मिलने के कारण परेषान किया जा रहा है'' एक तरफ सरकारी लूट है, भुखमरी है, बेकारी है, भूख है, गैरबराबरी है, मलेरिया है, जिल्लत है, अपमान है, अषिक्षा है तो दूसरी तरफ बंदूक है, पोटा है, जेल की सलाखें हैं, पुलिस की गोली हैं।''[46] दीपषिखा को पुलिस न्याय विभाग व्यक्तिगत आरोपों प्रत्यारोपों के आधार पर जलील कर रहे थे। येन–केन प्रकारेण दीपषिखा बिषुनपुर छोड़कर चली जाय, सभी लोग यही चाह रहे थे। अंध विष्वासों की सुनी–सुनाई में किसान, मजदूर एवं आदिवासी पिस रहे हैं। जंगल कुमार को अलग पछतावा है' ''कितनी उम्मीद के साथ बुलाया था तुम्हें पर कुछ नहीं हो सका। तुम पति से, प्रेमी से, जमाने से..... सभी से छली गई, हर जगह से खदेड़ी गईं। हो सके तो माफ कर देना मुझे! अष्वत्थामा की तरह मुझे भी इस घाव के साथ ही जीवित रहना होगा कि कुछ कर नहीं सका।''[47] जंगल कुमार चिन्तित हैं तो दीपषिखा में जज्बात है और बताती है कि सरकार आपको नहीं पकड़वाऍगी:'' सरकार जानती है कि आप उनके मारे नहीं मरेंगे। गॉव के लोगों के मन में यह है कि वेंकटेष प्रोजेक्ट फुलवा फिर इतवारी की पत्नी के चलते रूकी और दोनों ही के साथ आप थे इसलिए आपके चलते डर है प्रषासन के भीतर कि आपको अंदर करते ही हजारों–हजारों आदिवासी अपने जहरीले तीर कमान के साथ बाहर आ जाऍगें.....और आपके छोड़े, हुए निषानों पर चलेंगे, तो जब तक यह डर है, जब तक आप जैसे लोग हैं जो बीज बिखेरते रहेंगे, सब खत्म नहीं होगा।''[48] इन संवादों से बौद्धिक लड़ाई को बल मिलता है परन्तु बौद्धिक अपनी रोटी सेंक रहे हैं जबकि किसान, मजदूर, आदिवासी, महिलाऍ बेदखल होते जा रहे हैं। यानी राजनीतिक, बौद्धिक, धार्मिक धनाढ्य भेड़िए या

चाण्डाल या काल गर्ल लोकतंत्र को कम्पनीतंत्र में बदलकर विरासतीकरण स्थापित कर रहे हैं। इसीलिए अम्बेदकर का मंतव्य था कि हिन्दुस्तान में लोकतंत्र की तवज्जो नहीं, अगर लोकतंत्र लाना है तो बलिदान देना होगा। इसीलिए दीपषिखा, फुलवा, जंगलकुमार, रणधीरभगत जैसे लोग होम हो रहे हैं परन्तु नक्सल, माओवाद कम नहीं हो रहा है। मधु कांकरिया ने संवादों के अनुरूप आदिवासी भाषाओं, गीतों का उपयोग करके बेदखल किसान, मजदूर, आदिवासी एवं महिला की विडम्बना एवं विसंगति को चाक्षुष भाषा में निखारा है। लोकोक्तियों, कहावतों का पुट इस उपन्यास में मानवता का निदर्षन करता है। फिलहाल जंगल, जल, जमीन के रखवाले आज दर–दर की ठोकरें खा रहें हैं। लेखिका ने इस उपन्यास में विचारधारा को थोपा नहीं है बल्कि जमीनी विसंगतियों को बड़ी ईमानदारी के साथ लिखा है। नवजागरण के स्वप्न आज तक पूरे नहीं हुए बल्कि दमन चक्र, विनाष चक्र उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। जंगली प्राणियों की तरह महिलाओं, आदिवासियों एवं मजदूरों को भी येन–केन प्रकारेण भूँजा जा रहा है। आत्मनिर्भर, एक भारत श्रेष्ठ भारत गरीबों, किसानों आदिवासियों एवं महिलाओं के योगदान से बनेगा। वैष्वीकरण, निजीकरण, बाजारीकरण, निगमिक पूँजी को ज्यादा प्रश्रय न दिया जाय नहीं तो हैवानियत बढेगी। मधुकांकरिया की भाषाषैली, संवाद प्रसंगोचित समसामयिक समस्याओं से ओत–प्रोत हैं। निष्चित रूप से किसानों आदिवासियों एवं महिलाओं के शोषण एवं बेदखली को बड़ी बारीकी से यहॉ रखा गया है। राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी, नगपुरिया, मुंडा, बिरजिया, हो आदिवासियों की भाषाओं के पुट किसानों एवं आदिवासियों की अवदषा, विडंबना एवं विद्रूपता को ही प्रकट करते हैं। मधु कांकरिया के लिए विचारधारा के बजाय यथार्थ वस्तु स्थिति महिलाओं, आदिवासियों एवं किसानों की अभिव्यक्ति को महत्व दिया। सरकारी तंत्र एवं कॉरपोरेट्स सेक्टर मिलकर किसानों, आदिवासियों एवं महिलाओं को बुरी तरह से गिरफ्त में लिया है। आदिवासी, किसान मजदूर बनने के लिए विवष हैं तो शहर, गॉव, आदिवासियों की औरतों को मजबूरन वेष्या या शरोगेट मदर (उधार कोख) बनाया जा रहा है। स्त्री के आकर्षण एवं प्रत्याकर्षण से संसार चलता है परन्तु अमानवीय बिन्दुओं को रोकने में वर्तमान सरकारें कम्पनी तंत्र के माध्यम से रियासतीकरण को स्थापित कर रही हैं। सहृदय लेखिका से इसी तरह के लोकतांत्रिक उपन्यास की और अपेक्षा रखेंगे। कुछ भी हो जाय हर वर्ग की महिलाएँ किसी न किसी रूप में शोषित हैं वे चाहे दीपषिखा हों या फुलवा। किसान, आदिवासी एवं महिलाओं की दुर्दषा बद से बदतर होती जा रही है। कोर्ट, कचहरी, न्यायालय सब की गरिमा पर धब्बा लगा है। किसान, आदिवासी एवं महिलाओं की दुर्दषा से हम सब परिचित हैं। पढ़े लिखे लोग काम चोर मक्कार एवं धोखाधड़ी वाले होते हैं। किसान, आदिवासी एवं महिलाएँ कर्मठ होती हैं। एन.जी.ओ. एवं वनवासी योजनाओं के नाम गरीब, असहाय एवं आदिवासी को बेदखल किया जा रहा है। किसानों, आदिवासियों एवं असहायों पर बहुत लिखा जा रहा है और लिखा जाएगा, इनके जीवन में बदलाव आना कठिन दिखाई दे रहा है।

1. हम यहॉ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 07
2. हम यहॉ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 18
3. हम यहॉ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 32
4. हम यहॉ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 41
5. हम यहॉ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 44
6. हम यहॉ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 49
7. हम यहॉ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 52
8. हम यहॉ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 55
9. हम यहॉ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 57
10. हम यहॉ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 74
11. हम यहॉ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 83

12. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 90
13. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 93
14. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 126
15. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 127
16. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 128
17. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 129
18. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 131
19. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 139
20. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 148
21. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 149
22. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 155
23. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 164–165
24. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 167
25. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 173
26. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 187
27. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 189
28. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 191
29. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 196
30. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 198
31. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 200
32. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 206
33. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 219
34. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 219–220
35. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 221
36. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 224
37. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 221
38. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 252
39. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 255
40. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 256–257
41. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 267
42. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 278
43. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 278
44. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 281
45. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 283
46. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 285
47. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 293
48. हम यहाँ थे – मधु कांकरिया – पृष्ठ : 295